0956CH03

3

रीढ़ की हड्डी

जगदीश चंद्र माथुर

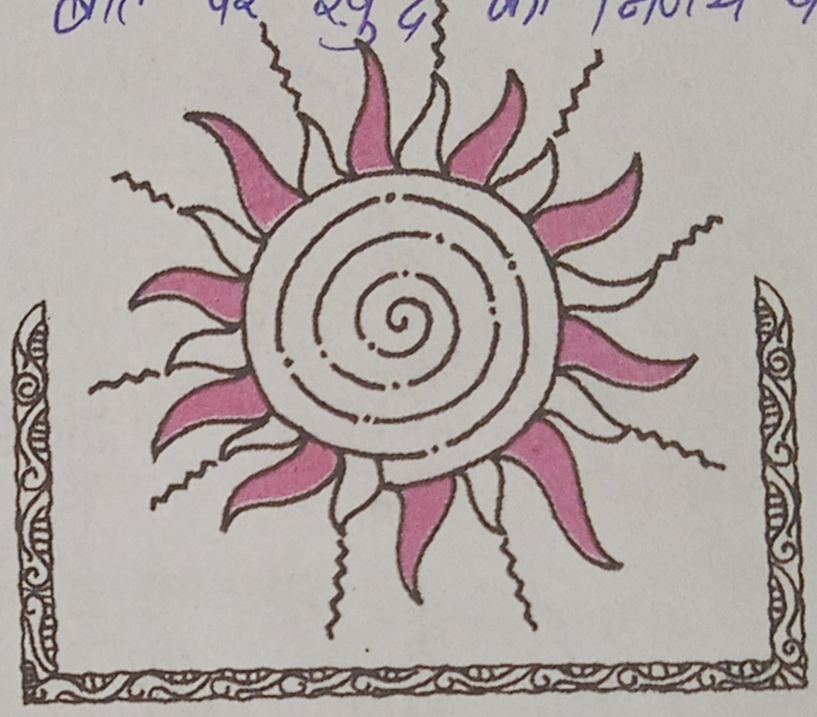

मामूली तरह से सजा हुआ एक कमरा। अंदर के दरवाज़े से आते हुए जिन महाशय की पीठ नज़र आ रही है वे अधेड़ उम्र के मालूम होते हैं, एक तख्त को पकड़े हुए पीछे की ओर चलते-चलते कमरे में आते हैं। तख्त का दूसरा सिरा उनके नौकर ने पकड़ रखा है।

बाबू : अबे धीरे-धीरे चल ...अब तख्त को उधर मोड़ दे...उधर...बस, बस!

नौकर : बिछा दूँ साहब?

बाबू : *(ज़रा तेज़ आवाज़ में)* और क्या करेगा? परमात्मा के यहाँ अक्ल बँट रही थी तो तू देर से पहुँचा था क्या?...बिछा दूँ साब!...और यह पसीना किसलिए बहाया है?

नौकर : *(तख्त बिछाता है)* ही-ही-ही।

बाबू : हँसता क्यों है?...अबे, हमने भी जवानी में कसरतें की हैं, कलसों से नहाता था लोटों की तरह। यह तख्त क्या चीज़ है?...उसे सीधा कर ...यों ...हाँ बस। ...और सुन, बहू जी से दरी माँग ला, इसके ऊपर